बिज़नेस स्टैंडर्ड
वर्ष 12 अंक 202

नकली दवा पर नकेल

केंद्रीय औषधि मानक नियंत्रण संगठन (सीडीएससीओ) के दिल्ली स्थित उप औषधि नियंत्रक को गत अगस्त में केंद्रीय जांच ब्यूरो ने हिरासत में ले लिया था। उस अधिकारी पर दवाओं को अनुमति देने में भ्रष्ट तरीके अपनाने का आरोप था। उसके बाद केंद्र एवं राज्यों में औषधि नियंत्रण से जुड़े कई अन्य लोगों को भी गिरफ्तार किया गया है। खुद नियामक ने भी माना है कि उसे अपने कामकाज से जुड़े कुछ पहलुओं को दुरुस्त करने की जरूरत है।

इसी वजह से नियामक संस्था में व्यापक पुनर्गठन के अलावा बड़े पैमाने पर अधिकारियों के स्थानांतरण भी साल के शुरू में किए गए थे। इसके बावजूद उपभोक्ता संरक्षण के पैरोकारों को पक्का यकीन है कि भारत में औषधि नियंत्रण दोषपूर्ण है और यहां पर नकली दवाओं की संख्या काफी अधिक है। इसके उलट छोटे दवा निर्माताओं का मानना है कि नियामक उनकी दवाओं को दोयम दर्जे का बताने पर आमादा है ताकि बड़े जेनेरिक दवा निर्माताओं को लाभ पहुंचाया जा सके। भारत के औषधि प्रशासन में व्याप्त अव्यवस्था का ही असर है कि किसी को भी नहीं मालूम है कि बाजार में बिक रही दवाएं कितनी भरोसेमंद हैं? कुछ आधिकारिक आंकड़े दावा करते हैं कि घटिया एवं नकली दवाएं स्टोर में उपलब्ध दवाओं के दो फीसदी से भी कम हैं। लेकिन इस दावे पर यकीन कर पाना खासा मुश्किल है। कई अफ्रीकी देशों में करीब एक तिहाई दवाएं नकली पाई जाती हैं। इन नकली दवाओं का बड़ा हिस्सा भारत से ही आयात होता है।

ऐसे में अचरज नहीं है कि विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) के अध्ययन में नकली दवाओं का बढ़ा हुआ आंकड़ा सामने आया है। लेकिन ऐसे स्वतंत्र अध्ययनों को भारतीय अधिकारी खारिज कर देते हैं। ऐसी स्थिति में पहला और सबसे अहम कदम नकली एवं कमतर दवाओं के बारे में वास्तविक स्थिति का सही अंदाजा लगाना होगा। यह देखना आसान है कि इस बारे में कोई स्पष्टता क्यों नहीं है?

दवा नियामक और दवा कंपनियों को अपने-अपने क्षेत्रों में क्षमता के मुताबिक प्रदर्शन नहीं कर पाने के बारे में अधिक समझ से खास फायदा नहीं होगा। लेकिन एक व्यापक, पारदर्शी एवं सुप्रचारित सर्वेक्षण न केवल अपनी खूबियों के नाते अहम होगा बल्कि आम लोगों एवं राजनीतिक तबके को औषधि आपूर्ति श्रृंखला के व्यापक सुधार के लिए प्रेरित करने में भी काफी मददगार होगा। हालांकि इस बात पर कोई सवाल नहीं उठाया जा सकता है कि ऐसी राजनीतिक ऊर्जा एवं निवेश लंबे समय से अपेक्षित है। जरा नकली दवा के दुष्परिणामों के बारे में सोचिए। नकली दवाओं पर असली दवा का लेबल चिपका होता है लेकिन उसमें कारगर अवयवों की मात्रा बहुत कम होती है।

जब ऐसी दवा एंटीबायोटिक हो तो फिर जीवाणुओं के उत्परिवर्तन के संदर्भ में सार्वजनिक स्वास्थ्य पर उसके परिणाम काफी गंभीर होते हैं। भारत के 'सुपरबग हॉटस्पॉट' होने के पीछे यह भी एक कारण है। डॉक्टर एंटी-बायोटिक दवाएं बार-बार लिखते हैं और अक्सर वे दोयम दर्जे की होती हैं। अगला कदम यह है कि दवाओं की आपूर्ति श्रृंखला से जुड़े हरेक कदम को अलग किया जाए और यह तय किया जाए कि समुचित नियामकीय क्षमता विकसित हो चुकी है और हरेक कदम पर नियमन लागू हो चुका है। यह पूछा जाना भी जरूरी है कि क्या राज्य एवं केंद्र के औषधि नियंत्रक अपनी क्षमता एवं मेहनत का दोहराव कर रहे हैं और क्या एक व्यापक पुनर्गठन एवं सुसंगतीकरण की जरूरत है? आखिर में, नियामकीय क्षमता में निवेश और नियामकों की स्पष्ट जवाबदेही तय करना भी बेहद जरूरी होगा। कई बार संदिग्ध अधिकारी नियामक का हिस्सा रहने के बाद जवाबदेही से बचने के लिए स्वास्थ्य मंत्रालय में लौट आते हैं। इस प्रवृत्ति पर रोक लगानी होगी। औषधि नियामक के पास समुचित संसाधन होने जरूरी हैं और इसमें स्टॉफ की तैनाती स्वास्थ्य मंत्रालय से स्वतंत्र की जानी चाहिए।

बिनय सिन्हा

कृषि और छोटे उद्योगों के पास उच्च वृद्धि की कुंजी

बड़ी कंपनियों को राहत देने से आर्थिक वृद्धि की रफ्तार तेज करने में मदद मिलने की संभावना कम है। इसके लिए कृषि एवं छोटे उद्योगों में व्यापक सुधार की जरूरत है। बता रहे हैं नितिन देसाई

कॉर्पोरेट कर में की गई हालिया कटौती ने शेयर बाजार को उत्साह से भर दिया है लेकिन यह भारतीय अर्थव्यवस्था को पांच लाख करोड़ डॉलर के लक्ष्य तक पहुंचाने के लिए वृद्धि दर के जरूरी स्तर के करीब भी नहीं है। कॉर्पोरेट कर में कटौती से आय बढ़ेगी लेकिन उससे निवेश को बढ़ावा नहीं मिलेगा जब तक कि कंपनियों को मांग बढ़ने के स्पष्ट संकेत न दिखें।

बुनियादी उपभोक्ता उत्पादों की मांग बढ़ाने का स्वाभाविक तरीका यह है कि रोजगार गारंटी योजना मनरेगा पर खर्च बढ़ाकर ग्रामीण अर्थव्यवस्था में पैसे डाले जाएं। अगर इसका मतलब एफआरबीएम के बजट गतिरोधों को तोड़ना ही है तो होने दीजिए। मुद्रास्फीति नियंत्रण की सनक ऐसी अर्थव्यवस्था में गलत है जहां बड़ा खतरा वृद्धि का बेपटरी होना और बढ़ती बेरोजगारी है। महंगे उपभोक्ता एवं पूंजीगत उत्पादों के मामले में राहत केवल तभी आएगी जब वृद्धि एवं रोजगार सृजन की स्थिति सुधरती है और ऋण बाजार की सेहत बेहतर होती है।

तात्कालिक मांग बढ़ाने पर जोर देने वाला कीन्स मॉडल अच्छा शुरुआती कदम माना जाएगा। लेकिन हमें सकल सावधि निवेश में वर्ष 2011-12 के शीर्ष स्तर की तुलना में आई पांच फीसदी गिरावट पर भी ध्यान देने की जरूरत है। इस गिरावट का बड़ा हिस्सा गैर-कॉर्पोरेट क्षेत्र का है। इस गिरावट में कुछ योगदान नोटबंदी एवं जीएसटी जैसे गतिरोधों का भी रहा है। लेकिन गिरावट का बड़ा कारण कृषि एवं छोटे उद्योगों के लिए हमारे नीतिगत प्रारूप का पुराना पड़ जाना है जो अब इन क्षेत्रों के विकास की संभावनाओं का दोहन कर पाने में सक्षम नहीं रह गया है। इन क्षेत्रों का सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में योगदान करीब आधा है।

हमारी कृषि नीति 1960 के दशक के मध्य में बनाई गई थी। उस समय हम खाद्यान्नों की भारी कमी से जूझ रहे थे। उसमें हरित क्रांति की तकनीकों का इस्तेमाल करने के लिए किसानों को मनाने पर जोर दिया गया था। चावल और गेहूं जैसे खाद्यान्नों की उदार मूल्यों पर सार्वजनिक खरीद का भरोसा दिलाया जाता था। लेकिन इस नीतिगत परिप्रेक्ष्य का अब कोई औचित्य नहीं है। साठ के दशक में आए बहुचर्चित सूखे से ऐन पहले भारत में चावल और गेहूं का प्रति व्यक्ति उत्पादन करीब 100 किलोग्राम था। वर्ष 2018-19 में यह बढ़कर 160 किलोग्राम प्रति व्यक्ति हो चुका है और गेहूं एवं चावल के भंडारों का बढ़ता आकार अधिक उत्पादन की तस्दीक करता है।

बहरहाल साठ के दशक में गेहूं एवं चावल की उपज के लिए तगड़ा प्रोत्साहन देकर खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने की रणनीति आज के दौर में अपनी अहमियत खो चुकी है। गेहूं एवं चावल का अंशदान फसल के उपज मूल्य के एक तिहाई से भी कम है। गन्ने की बात करें तो चीनी मिलें अक्सर समय पर भुगतान नहीं करती हैं और सहकारी समितियां भी खरीदे गए दूध का भुगतान ठीक से नहीं करती हैं। इस तरह हमारे किसानों की उपज का करीब 80 फीसदी हिस्सा बाजार जोखिमों के अधीन होता है और वे उपज को मनचाही जगह पर बेचने से रोकने वाले कानूनों से भी बंधे हुए हैं। यह एकांगी व्यवस्था किसानों को हतोत्साहित करती है जिससे परेशान होकर कई बार वे पारिस्थितिकी के हिसाब से गलत फसल चुन लेते हैं और सरकार पर सब्सिडी का बोझ बढ़ा देते हैं।

कृषि नीति का जोर चुनिंदा फसल या आगत-केंद्रित दखल से हटकर व्यापक समर्थन पर होना चाहिए जो फसल और बागवानी से लेकर पशुधन को भी समाहित करे। कृषि शोध एवं विस्तार, बाजार ढांचे का विकास, कृषि प्रसंस्करण और भंडारण गतिविधियों में सभी फसलों एवं सभी क्षेत्रों को तवज्जो दी जानी चाहिए। यह कृषि एवं कृषि प्रसंस्करण में कंपनियों एवं परिवारों दोनों के निवेश को बढ़ावा देगा।

हालांकि बड़ा बदलाव यह होगा कि अपनी उपज बेचने को लेकर किसानों पर लगी सभी तरह की पाबंदियां हटा दी जाएं। खरीदारों और संगठित कृषि प्रसंस्करण इकाइयों के बीच उपज खरीद के लिए प्रतिस्पर्द्धा होने पर उस उत्पाद की कीमतों में होने वाली उठापटक कम हो सकती है। ऐसा होने पर कृषि उपज खरीद को लेकर अधिक विश्वसनीय एवं स्थिर नीति बन सकेगी जबकि अभी सरकार हर मौसम में उपज की घट-बढ़ पर घबराहट में फैसले लेने लगती है। हालांकि इससे कृषि को सब्सिडी देने की जरूरत खत्म नहीं होगी क्योंकि दूसरे देशों में कृषि सब्सिडी जारी रहेगी। लेकिन इसका आधार कृषि उत्पादन में दी जाने वाली सब्सिडी न होकर आय समर्थन हो सकता है।

विनिर्माण एवं सेवा क्षेत्र में सक्रिय सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम इकाइयों का जीडीपी में योगदान करीब 30 फीसदी है। सूक्ष्म इकाइयों में करीब 10.7 करोड़ लोगों को रोजगार मिलता है जबकि छोटी एवं मझोली इकाइयां 30 लाख रोजगार देती हैं। विनिर्माण, कारोबार एवं अन्य सेवा वर्ग में इनकी हिस्सेदारी एक-एक तिहाई है। खासकर कारोबार क्षेत्र की सूक्ष्म एवं लघु इकाइयां नोटबंदी की वजह से बुरी तरह प्रभावित हुई थीं क्योंकि उनका कारोबार मूलत: नकदी पर चलता था। कुछ महीनों बाद ये इकाइयां जीएसटी के सही तरीके से लागू नहीं होने से दोबारा प्रभावित हुईं। इसके चलते फौरी तौर पर कई इकाइयां बंद हो गईं। जीडीपी, निर्यात एवं रोजगार में इन इकाइयों की बड़ी हिस्सेदारी को देखते हुए उपभोग व्यय वृद्धि में सुस्ती, निर्यात ठहराव और पारिवारिक निवेश में गिरावट को काफी हद तक समझा जा सकता है।

हमारे कई छोटे उद्योग कर दायरे से बाहर रहने की वजह से न केवल बचे रहे बल्कि फले-फूले भी। लेकिन जीएसटी के आने के बाद ऐसा हो पाना काफी मुश्किल हो रहा है। छोटे उद्योगों को कर दायरे में लाना वांछनीय है लेकिन ध्यान इस रास्ते में आने वाली अड़चनें दूर करने पर होना चाहिए। लेकिन मुख्य ध्यान एक ऐसे नीतिगत प्रारूप पर होना चाहिए जो स्थायी रूप से छोटा बने रहने का ही पोषण न करती हो।

लघु उद्योग नीति ऐसे आग्रहों पर आधारित थी जो उन्हें बड़ा होने से हतोत्साहित करती थी। अच्छा प्रदर्शन कर रहे कई छोटे उद्यमी भी छोटे कारखानों की संख्या बढ़ाकर मिलने वाले लाभ को बढ़ाने का तरीका अपनाते थे। इन उत्पादों को मिलने वाले लाभ अब खत्म हो चुके हैं और कारखाना अधिनियम, दुकान एवं प्रतिष्ठान अधिनियम एवं श्रम कानूनों में नियामकीय विसंगतियां बरकरार हैं लेकिन छोटी इकाइयां अब भी छोटी ही बनी रहना चाहती हैं।

मानकों का पालन करने वाले कानूनों को स्वरोजगार में लगे लोगों के अलावा सब पर लागू किया जाए। बड़ी इकाइयों के मानकों में थोड़ी शिथिलता लाने और छोटी इकाइयों के मानकों को सख्त करने की जरूरत होगी। औपचारिक एवं अनौपचारिक क्षेत्र का विभेद इतिहास हो जाना चाहिए। कुछ मायनों में जीएसटी ऐसा कर रहा है। चुकाए गए कर का क्रेडिट मिलने से छोटी इकाइयां भी जीएसटी नेटवर्क में शामिल होने को बाध्य हो रही हैं।

छोटे-बड़े अवरोध खत्म होने से कंपनियों के आकार का भी नया ढांचा उभरेगा जिससे आर्थिक सूझबूझ, छोटी इकाइयों के क्रेडिट प्रवाह में सुधार और गैर-कॉर्पोरेट उद्यम निवेश को बल मिलेगा। परिवार के स्तर पर किए जाने वाले निवेश में इसका बड़ा हिस्सा होता है। परिवारों की बचत एवं निवेश में सुधार हालात में बदलाव का लिटमस टेस्ट है।

उच्च वृद्धि की राह पर जाने के लिए निर्यात वृद्धि जरूरी है और वर्ष 2011-12 के बाद से निर्यात के स्थिर मूल्य होने से यह मुद्दा तात्कालिक अपरिहार्य बन जाता है। कुल निर्यात में 45-50 फीसदी अंशदान रखने वाले कृषि एवं छोटे उद्यमों के लिए आधुनिक एवं सुधरी नीति अपनाने से बड़ी मदद मिलेगी। निश्चित रूप से इसे व्यापार सहूलियत में दूसरे विशिष्ट सुधारों और वैश्विक प्रतिस्पर्द्धा पर केंद्रित विनिमय दर नीति की जरूरत पड़ेगी। सरल शब्दों में, हमें बड़ी कंपनियों से परे देखना होगा और अपने किसानों एवं छोटे उद्यमियों की वृद्धि संभावनाओं को नई उड़ान देनी होगी।

फैसला लेने की प्रक्रिया में क्यों होनी चाहिए ज्यादा सहभागिता?

दिल्ली डायरी

ए के भट्टाचार्य

नरेंद्र मोदी सरकार का छठा साल चल रहा है और आर्थिक नीति निर्माण की उसकी शैली में एक ऐसा रुझान दिखता है जो समस्याग्रस्त होने के साथ-साथ हैरानी भी पैदा करता है। सरकार फैसला लेने की प्रक्रिया की अपनी कमजोरी को पहचानने में नाकाम है और इस कारण उसके प्रतिकूल प्रभावों को कम या खत्म करने में भी असफल है।

इस समस्या की जड़ मोदी सरकार की यह नाकामी है कि वह एक कारगर आर्थिक सलाहकार और नीतिनिर्माता टीम नहीं बना पाई। इसकी कमी अब ज्यादा खल रही है क्योंकि भारतीय अर्थव्यवस्था मंदी की चुनौतियों का सामना कर रही है। ऐसा नहीं है कि मोदी सरकार के पास आर्थिक सलाहकार परिषद नहीं है या उसके पास वित्त मंत्रालय में मुख्य आर्थिक सलाहकार नहीं है या आर्थिक मंत्रालयों में बैठे सचिव समक्ष नहीं है। सलाहकार संस्थाएं मौजूद हैं और आर्थिक मंत्रालयों में बैठे अधिकारियों के पास आर्थिक नीतियों के क्रियान्वयन के लिए जरूरी अनुभव और क्षमता है।

लेकिन इन सबको एक तरह से निष्प्रभावी बना दिया गया है। इसकी वजह यह है कि मोदी सरकार उन लोगों की सलाह नहीं सुनती है जिन्हें अर्थव्यवस्था पर नजर रखने और आर्थिक नीति के उपाय सुझाने का काम सौंपा गया है। निर्णय लेने की प्रक्रिया काफी हद तक केंद्रीकृत बनी हुई है। जब अहम आर्थिक मंत्रालयों के शीर्ष अधिकारियों से सलाह मशविरा किया जाता है तो माहौल प्रस्ताव पर चर्चा या असहमति का नहीं होता है। इसके बजाय वरिष्ठ अधिकारियों की मानसिकता ऊपर से आने वाले हर प्रस्ताव को मंजूरी देने की है।

सरकार के कई आर्थिक सलाहकार किनारा कर चुके हैं। लेकिन सरकार की सलाहकार व्यवस्था में कोई सुधार नहीं आया है। शायद नए सलाहकार इस बात से अच्छी तरह वाकिफ हैं कि उन्हें सीमित भूमिका निभानी है। स्वाभाविक है कि इस स्थिति में सर्वश्रेष्ठ अर्थशास्त्री सरकार को आर्थिक नीति पर सलाह देने के लिए आगे नहीं आएंगे। अहम आर्थिक मंत्रालयों में कई वरिष्ठ सचिवों की भी यही सोच है।

आर्थिक नीति निर्माण में इस तरह की स्थिति सरकार की राजनीतिक एजेंडे को लागू करने की क्षमता के प्रतिकूल है। जिस तरह सरकार ने जम्मू-कश्मीर से संबंधित अनुच्छेद 370 को संशोधित किया और राज्य को दो केंद्रशासित प्रदेशों में विभाजित किया, वह सरकार की अग्रिम योजना, इससे पैदा होने वाली स्थिति को संभालने की तैयारी और व्यवस्था के प्रबंधन का उदाहरण है। संभव है कि जिस तरह यह इस योजना पर अमल किया गया या व्यवस्था को संभाला गया, उससे आप सहमत न हों लेकिन सरकार ने कभी भी अपने राजनीतिक जनादेश से ध्यान नहीं हटाया। जिस तरह सरकार नागरिकता कानून में संशोधन कर रही है या राष्ट्रीय नागरिक पंजी को लागू कर रही है, उसमें भी यह सोच देखी जा सकती है।

इसकी तुलना सरकार द्वारा अपनी प्रमुख आर्थिक नीतियों को लागू करने के तरीके से कीजिए और आपको अंतर पता चल जाएगा। वस्तु एवं सेवा कर (जीएसटी) का क्रियान्वयन बड़ी आर्थिक दिक्कत बन रही है क्योंकि न तो इसे अच्छा और सरल कर बताया जा रहा है और न ही इससे केंद्र और राज्यों को उम्मीद के मुताबिक राजस्व मिल रहा है। इससे एक बड़ी चुनौती यह पैदा हुई है कि इसके अनुपालन का बोझ लाखों कारोबारियों और छोटे उद्यमियों पर डाल दिया गया जो कभी भी अपने लेनदेन का रिकॉर्ड रखने के आदी नहीं रहे हैं।

कर व्यवस्था में सुधार से ज्यादा, जीएसटी से यह उम्मीद की जा रही थी कि इससे करदाताओं के व्यवहार में आमूलचूल बदलाव आएगा। भारतीय व्यापारियों और छोटे उद्यमियों से अनुपालन के स्तर में इस तरह की छलांग की उम्मीद करना ज्यादा महत्त्वाकांक्षी विचार था। जीएसटी के क्रियान्वयन से महज आठ महीने पहले ही उन्हें नोटबंदी का अतिरिक्त दबाव झेलना पड़ा था।

सरकार की यह उम्मीद कि असंगठित क्षेत्र के सारे कारोबारी शत प्रतिशत इस व्यवस्था को अपनाएंगे, गलत थी। उन्हें जीएसटी अपनाने के लिए ज्यादा समय की जरूरत थी क्योंकि भारतीय कारोबारियों और छोटे उद्यमों का मौजूदा अनुपालन स्तर बहुत खराब था।

जीएसटी लागू होने के बाद अर्थव्यवस्था अभी स्थिर भी नहीं हुई थी कि सरकार ने एकल इस्तेमाल प्लास्टिक पर प्रतिबंध के संकेत दे दिया है। लगता है कि हाल के दिनों में सरकार ने इस पर पुनर्विचार किया है लेकिन इससे एकल इस्तेमाल प्लास्टिक का उत्पादन, आपूर्ति और इस्तेमाल करने वाले छोटे उद्यमियों पर भारी असर पड़ा है। उदाहरण के लिए हलोल में हजारों छोटी इकाइयों में अनिश्चितता की स्थिति है क्योंकि उन्हें आशंका है कि एकल इस्तेमाल प्लास्टिक पर जल्दी ही प्रतिबंध लग सकता है।

ऐसा नहीं है कि सरकार को करदाताओं के अनुपालन स्तर में सुधार के लिए बड़े आर्थिक नीतिगत बदलाव नहीं लाने चाहिए या पर्यावरण को नुकसान से बचाने के लिए प्लास्टिक के इस्तेमाल को हतोत्साहित नहीं करना चाहिए। इन बदलावों की जरूरत है और इसका उद्देश्य सराहनीय है। लेकिन आर्थिक नीति निर्माण का मतलब केवल साहसिक घोषणाएं करना नहीं है। इसके लिए पर्याप्त अग्रिम योजना और विभिन्न पक्षों के बीच सलाह मशविरे की जरूरत होती है जिसमें विशेषज्ञ और सरकार के अपने सलाहकार तथा अफसरशाह भी शामिल हैं।

इस दिशा में पहला कदम निर्णय लेने में केंद्रीकृत व्यवस्था में कटौती होगा। सरकार के सलाहकारों और अफसरशाहों को विभिन्न प्रस्तावों पर अपनी राय रखने की आजादी होनी चाहिए। नीति निर्माण में अहम मंत्रालयों को ज्यादा कारगर भूमिका दी जानी चाहिए जो मंत्रिमंडल को अपना फीडबैक दे सकते हैं। अर्थव्यवस्था में सुस्ती के संकेत हैं और उसमें तेजी के उपायों पर फैसला लेने में गलती की कोई गुंजाइश नहीं है। ज्यादा भागीदारी वाली निर्णय लेने की प्रक्रिया में गलतियों की गुंजाइश कम होगी।

कानाफूसी

मुसीबत में

किसी नौकरीशुदा व्यक्ति के लिए अपनी तैनाती और प्रिय अभिनेता की फिल्म के बीच चयन करना काफी मुश्किल भरा भी हो सकता है। आंध्र प्रदेश के कुर्नूल जिले में युवा उपनिरीक्षकों के एक समूह को यह सबक सीखने को मिला। इन उपनिरीक्षकों ने दक्षिण भारत के सुपर स्टार चिरंजीवी की 151वीं और सबसे महत्त्वाकांक्षी फिल्म सई रा नरसिंह रेड्डी देखने का निर्णय लिया। इन पुलिसकर्मियों ने अपनी ड्यूटी पर फिल्म को तरजीह दी और सुबह का शो देखने सिनेमा हॉल चले गए। सब कुछ ठीक रहता अगर उन्होंने फिल्म देखने जाने की तस्वीरें सोशल मीडिया पर नहीं डाल दी होतीं। कुर्नूल के पुलिस अधीक्षक ने इन तस्वीरों को देख लिया। वह इस बात पर नाराज हुए कि इन पुलिसकर्मियों ने न इजाजत मांगी और न ही छुट्टी ली। संयोग से उसी दिन ग्राम सचिव कार्यालयों का उद्घाटन था और पुलिसकर्मियों की ड्यूटी इसमें लगी थी। जानकारी के मुताबिक जांच बिठा दी गई है।

सहमति-असहमति

कांग्रेस पार्टी में नेतृत्व का संकट गहराता जा रहा है। वरिष्ठ नेता सलमान खुर्शीद द्वारा पार्टी के भविष्य को लेकर चिंता जताए जाने के बाद पूर्व सांसद और कांग्रेस महासचिव ज्योतिरादित्य सिंधिया ने बुधवार को ऐसी ही चिंता जताई। उन्होंने कहा कि पार्टी को तत्काल आत्मावलोकन करने की आवश्यकता है। हालांकि आगामी विधानसभा चुनाव में पार्टी के प्रदर्शन को लेकर दोनों नेताओं में मतभेद है। सिंधिया ने जहां महाराष्ट्र विधानसभा चुनाव में पार्टी की जीत होने की उम्मीद जताई, वहीं खुर्शीद ने कहा कि हरियाणा और महाराष्ट्र चुनाव में पार्टी के जीतने की संभावना नहीं है।

आपका पक्ष

गरीबों के लिए वरदान आयुष्मान भारत

आयुष्मान भारत योजना एक साल पहले गरीबों के इलाज के लिए शुरू की गई थी। एक साल में इसके लाभार्थियों की संख्या लगभग 46 लाख हो गई है जो काफी कम है। अगर राज्यवार देखा जाए तो संपन्न राज्यों जैसे गुजरात तथा महाराष्ट्र में लाभार्थियों की संख्या अधिक है। पिछड़े राज्यों में संख्या की कमी की प्रमुख वजह जागरूकता की कमी हो सकती है। योजना को सफल बनाने के लिए पिछड़े राज्यों को भी संसाधन उपलब्ध कराने की जरूरत है। इस योजना से निजी अस्पताल में इलाज कराने वालों की संख्या में बढ़ोतरी हुई है। लेकिन इसका खमियाजा सरकारी अस्पतालों को उठाना पड़ सकता है क्योंकि योजना का लाभ लेने वाला व्यक्ति सरकारी अस्पताल नहीं जाना चाहेगा। इससे सरकारी अस्पतालों में सुधार की गुंजाइश खत्म हो रही है। निजी अस्पतालों में लगभग 1,200 धोखाधड़ी के मामले भी सामने आए हैं और

350 से अधिक निजी अस्पतालों पर जांच चल रही है। इस योजना से राज्यों का राजस्व घाटा बढ़ा है तथा गैर भाजपा सरकार वाले राज्यों में इस योजना को लागू नहीं किया गया है। उन राज्यों में राज्य की स्वास्थ्य योजना लागू है जो सहकारी संघवाद के ढांचे के लिए सही नहीं है। नि:संदेह यह योजना गरीबों की स्वास्थ्य सेवा के लिए मील का पत्थर साबित हो सकती है लेकिन इसके कमियां खत्म कर सुचारु रूप लागू करने की जरूरत है।

आयुष्मान भारत योजना के लाभार्थियों की संख्या 46 लाख से अधिक हो गई है

संगीता चौधरी, जयपुर

देश के जीडीपी को भी कुपोषण से नुकसान

कुपोषण से ग्रस्त बच्चे बड़े होकर शारीरिक व मानसिक रूप से कमजोर होने के कारण उत्पादक कार्य में योगदान नहीं दे पाते हैं जिससे वे गरीबी तथा बेरोजगारी के दुष्चक्र में फंस जाते हैं। कुपोषण से जीडीपी को अनुमानित नुकसान सालाना चार प्रतिशत है। नीति आयोग ने भी चिंता जाहिर करते हुए कहा है कि उच्च आर्थिक वृद्धि दर हासिल करने के लिए कुपोषण की समस्या दूर करना जरूरी है। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वे के अनुसार वर्तमान में पांच साल से कम उम्र के 35.7 प्रतिशत बच्चे कुपोषित हैं जबकि 15 से 49 वर्ष के 53.1 प्रतिशत महिलाएं खून की कमी से पीड़ित हैं। अन्य आंकड़ों की बात करें तो देश में शिशु मृत्यु दर 37 बच्चे प्रति हजार है। मातृ मृत्यु दर 130 महिलाएं प्रति लाख है। विश्व भुखमरी सूचकांक में भारत का स्थान 103वां है और 21.9 प्रतिशत लोग गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन कर रहे हैं। खाद्यान्न में आत्मनिर्भर एक देश में कुपोषण से मृत्यु विचलित कर देने वाली बात है। इसके बावजूद स्वास्थ्य सेवाओं पर खर्च हमारी जीडीपी का मात्र 1.1 प्रतिशत है। केंद्र और राज्य सरकारें इससे निपटने के लिए प्रयासरत हैं लेकिन सरकारी योजनाओं की व्यापक प्रचार-प्रसार के साथ लोगों में जागरूकता भी आवश्यक है। क्रियान्वयन पर अधिक जोर, तालमेल तथा जमीनी स्तर के कार्यवाहक जैसे आंगनबाड़ी कार्यकर्ता, आशा कार्यकर्ता व प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र को उन्नत और आधुनिक बनाने की जरूरत है। कुपोषण खत्म करने के लिए सरकारी प्रयासों के साथ व्यक्तिगत और सहकारी स्तर पर योगदान देने की भी जरूरत है। घरेलू सहायक के बच्चों को सुपोषित करने की जिम्मेदारी उठाने की जरूरत है।

जितेंद्र साहू, शहडोल

पाठक अपनी राय हमें इस पते पर भेज सकते हैं : संपादक, बिजनेस स्टैंडर्ड लिमिटेड, 4, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली - 110002. आप हमें ईमेल भी कर सकते हैं : lettershindi@bsmail.in
उस जगह का उल्लेख अवश्य करें, जहां से आप ईमेल कर रहे हैं।